।। श्री भवानी माता ने नमः ।।

।। श्री भवानी माता ।।

नागौर (राजस्थान)

Santosh Art # 09822418451

।। श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः ।।

।। श्री महावीराय नमः ।।

।। श्री भवानी माता ने नमः ।।

श्री अखिल भारतीय नाहर बंधु महा संघ
नाहर भवानी माताजी ट्रस्ट

नाहर वंश का इतिहास

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

NAHAR

ESTD. 2014

Sri Akhil Bhartiya NAHAR Bandhu Maha Sangh

नाहर मिले नाहर से

visit us : www.naharparivaar.org

।। श्री महावीराया नमः ।।

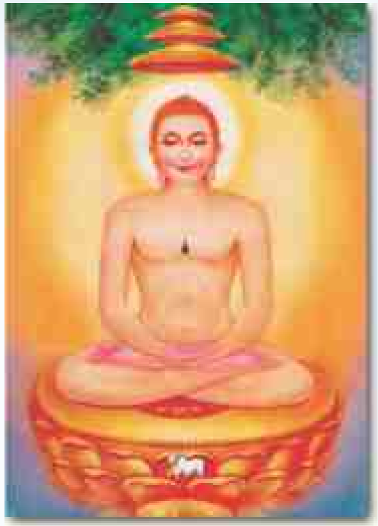

णमो अरिहंताणं
णमो सिध्दाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहुणं

एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणा सणो ।
मंगलाणंच सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ।।

भवानी माता की आरती

ॐ जय माँ भवानी, बोलो ॐ जय माँ भवानी
नाहरो की कुलदेवी, बोलो जय माँ भवानी
नागौर में तुम बेठी, अहिछत्र में माँ
रक्षा हमारी करती– बनके रक्षक माँ

माँग सिन्दुर बिराजत, टिको निग मृग को ......
शेर की करती सवारी, शेरो वाली माँ
ॐ जय माँ भवानी, बोलो ॐ जय माँ भवानी
नाहरो की कुलदेवी, बोलो जय माँ भवानी

तू ही लक्ष्मी रुपा, तू ही सरस्वती माँ
त्रिभुवन की तू नायक, बनके बैठी माँ
ॐ जय माँ भवानी, बोलो ॐ जय माँ भवानी
नाहरो की कुलदेवी, बोलो जय माँ भवानी

तू ही रिध्दी सिध्दी, तू ही लब्धी माँ
ब्रह्मा गणपती गाए, हर–हर गाए माँ
ॐ जय माँ भवानी, बोलो ॐ जय माँ भवानी
नाहरो की कुलदेवी, बोलो जय माँ भवानी

महाशक्ति महाशाल, तू ही भवान माँ
कर उध्दार हमारा, हम तेरे बच्चे माँ
ॐ जय माँ भवानी, बोलो ॐ जय माँ भवानी
नाहरो की कुलदेवी, बोलो जय माँ भवानी

नाहर सभी यह कहते, करती पार हे माँ
नागौरवाली माता, तेरी जय जय जय हो
ॐ जय माँ भवानी, बोलो ॐ जय माँ भवानी
नाहरो की कुलदेवी, बोलो जय माँ भवानी

।। श्री भवानी माता की जय ।।   ।। श्री सच्चाई माता की जय ।।

।। ॐ श्री अर्हम् श्री शंखेश्वरा पार्श्वनाथाय नमः ।।

।। श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः ।।

प्रिय नाहर भाई,

राजेश नाहर का सप्रेम जयजिनेंद्र, आप सभीको हार्दिक बधाई और धन्यवाद देता हु ।

मेरी प्रथम पुस्तिका नाहर गोत्र की जानकारी को आप लोगोंने पसंद किया उसिकीही प्रेरणा लेके और नाहर इतिहास की जानकारी देने का प्रयत्न हम कर रहे हैं।

मेरी आप भाईयों से विनती हैं नाहर भवानी माता मंदिर के निर्माण काम चालू हुआ हैं । हर एक राज्योंसे नाहर भाई जुडे और अपने कुलमाता का मंदिर भव्य और विशाल करने हेतु तन, मन, धन से जुडे । और आपकी माता प्रति श्रध्दा बढें यही भाव हैं ।

भारत के कही शहरोमें नाहर परिवारों का संम्मेलन होने चालू हो गये हैं इसी लिए मेरे सभी नाहर बंधुओं कों बहोत बहोत हार्दिक बधाई और धन्यवाद । भारतके कही कोनो के शहरों में संम्मेलन होने बाकी हैं मेरी आपसे बिनती हैं आपने गाँवमें अपने योग्यता नुसार नाहर परिवारों का संम्मेलन लेकर पुरे विश्वमें नाहर भाईयों का एकता की नयी ज्योत जलायें रखे । साल में एक बार अपने शहरों में संम्मेलन करे तथा अखिल भारतीय नाहरोंका संम्मेलन दो साल में एक बार हो । अपने अपने शहरों की नाम पत्ता सूची बनाकर भेजे अथवा अपनी वेब साईड पे अपनी पुरी जानकारी देवे । तथा **नाहर वंश का इतिहास** यह पुस्तिका आप वेबसाईड से डाऊनलोड कर सकते हैं ।

www.naharparivaar.com/org

आपका भाई राजेश पी. नाहर, पुना

प्रस्तावना

ओसवाल जैन समाज का अत्यन्त समृद्ध, सम्पन्न एवं उन्नत इतिहास रहा है। इस समाज की वर्तमान में लगभग दो हजार गोत्र–उपगोत्र हैं जिनका सभी का एक गौरवाली अतीत है। ओसवाल समाज न केवल धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में अपितु शूरता के क्षेत्र में भी अग्रणी पंक्ति में रहता आया हैं। वर्तमान समय में राष्ट्र की समृद्धि तथा समाज के संस्कार, दोनो को अक्षुण्ण रखने की दिशा में ओसवाल समाज का बहुत बड़ा योगदान है। नारी शिक्षा, नैतिक मूल्य, सामाजिक संवेदना तथा धार्मिक कार्यो, सभी में इस समाज के परिवारों ने बड़–चढ़ कर भाग लिया हैं।

ओसवाल समाज की पुरानी गोत्रों में से **एक नाहर गोत्र** है। जिस प्रकार अधिकांष जैनी परिवार क्षत्रिय राजपूतों से निसृत हुए हैं उसी प्रकार नाहर गोत्र भी क्षत्रिय (परमार) राजपूतों से बनाई गई। नाहर गोत्र का इतिहास अत्यंत प्राचीन हैं। लेखकगण की दृष्टि से नाहरों का इतिहास अमूमन १८०० वर्ष पुराना है। **नाहर गोत्र** की उत्पत्ति के बारे में भिन्न–भिन्न मत मतान्तर थे। अनेक किंवदन्तियां तथा लोकमत प्रकाश में थे। किन्तु लेखकगणों नें सभी मतों का गहन अध्ययन कर तथा भाटों, पण्डितों, आदि से जानकारी प्राप्त कर जो निचोड़ तैयार किया वही इस पुस्तक में समाविष्ट हैं।

में थे। किन्तु लेखकगणों नें सभी मतों का गहन अध्ययन कर तथा भाटों, पण्डितों, आदि से जानकारी प्राप्त कर जो निचोड़ तैयार किया वही इस पुस्तक में समाविष्ट हैं।

वर्षो से इस परिवार के साथ–साथ अनेक जैन परिवारों का वास्तविक इतिहास पोथियों में दबा पड़ा था। समृद्ध–सम्पन्न इतिहास के पन्नों का इस तरह दबा रहना कुछ लोगों को नागवार गुजरा। उन्होने इतिहास को अपने वास्तविक स्वरूप में लाकर लोगों के समक्ष रखने की ठानी। इनमें से मुख्य नाम हैं– उपाध्याय **श्री रामलालजी गणि** (महाजन मुक्तावली के लेखक), **श्री मांगीलाल जी भूतोड़िया** (इतिहास की अमर बेल–ओसवाल के लेखक), **श्री पूरणचन्द जी नाहर** (कलकत्ता) , **श्री ज्योति स्वरूपजी नाहर** (कलकत्ता) **श्री सयारचन्दजी नाहर** (चैन्नई), **श्री राजेशजी पी. नाहर** (पूना) आदि। इन सभी के पूर्वतर प्रयासों से प्रेरणा पाकर मैंने भी अग्निहोत्र में एक तुच्छ आहूति देने का प्रयास करते हुए कुछ तथ्य एकत्रित किए। जब मैने मेरा शोध–पत्र **श्री सयारचन्दजी सा.** को चैन्नई तथा **श्री राजेशजी पी. नाहर** को पूना भेजा तब उन्होनें उनके स्वयं के द्वारा एकत्र सामग्री मुझे सहर्ष भेज दी तथा सुझाव दिया कि सभी सामग्री को मिलाकर एक तथ्यमूलक वास्तविक इतिहास लिखा जावें। यही इस पुस्तक का आधार है। आप दोनों महानुभावों के मार्गदर्शन से ही मैनें प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री का संकलन किया है। **श्री सयारचन्दजी सा. नाहर** तथा **श्री राजेशजी पी. नाहर** के सुझाव, सामग्री तथा अर्थ सहयोग से यह पुस्तक आपके हाथों में है। अभी शोध जारी है। प्रयास चालु हैं। समस्त नाहर बंधुओं के सहयोग से शीघ्र ही नाहर परिवार के इतिहास, वंशावली एवं प्रवसन से संबधित एक वृहद ग्रंथ तैयार करने की अभिलाषा है। कुलदेवी तथा पूर्वजों का आर्शीवाद एवं आप सभी का मार्गदर्शन इस कार्य हेतु संबल का कार्य करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तिका का विमोचन **दि. ११–१२ जनवरी २०१४** को **श्री केसरियाजी तीर्थ राज.** में होने जा रहें **प्रथम श्री अखिल भारतीय नाहर बंधु शिखर सम्मेलन** के दौरान करने का निश्चय किया गया हैं। उदयपुर निवासी **श्री मनोहरसिंहजी नाहर** तथा उनके पुत्र **श्री अनिलजी नाहर** के अविस्मरणीय सहयोग के लिए लेखकगण आभारी हैं।

दि. १, जनवरी २०१४ **प्रो. डॉ. विरेन्द्र नाहर,** इन्दौर

नागौर (राजस्थान) की जानकारी

नागौर : जोधपुर से १३२ कि.मी दूरी पर हैं और नागौर से ओसियामाता का मंदिर १०० कि. मी. दूरी पर हैं।

तीर्थाधिराज : श्री आदिनाथ भगवान, पद्मासनस्थ श्वेतांबर मंदिर,

प्राचीनता : प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका नाम नागपुर रहने का उल्लेख है । किसी समय यह जैन धर्म का मुख्य केन्द्र था।

कला और सौंदर्य : यहाँ के मंदिरों में प्राचीन प्रतिमाओं कें दर्शन होते हैं । इस मंदिरमें काष्ठ से निर्मित एक दरवाजे की कला अति ही दर्शनीय हैं । मंदिर में काच का काम अति ही सुंदर ढंगसें किया हैं।

अन्य मंदिर : एक गुरु मंदिर है, दो दादावाडीयाँ हैं । स्टेशन के पास श्री चंद्रप्रभू भगवान मंदिर हैं। फोन : 01582-320675 मो. 09983249990

सुविधाएँ : ठहरने के लिए रेल्वे स्टेशन के पास श्री चंद्रप्रभू भगवान जैन धर्मशाला हैं।

नाहर कुल माता मंदिर :

श्री भवानी माता नाहर गोत्र की कुल माता मंदिर की वर्तमान स्थिती : श्री भवानी माता का मंदिर नागौर दुर्गमें स्थित हैं । नाहर गोत्र के ओसवाल जातका और मुंढन हेतु नागौर दुर्ग के देवी के मंदिर आते हैं । यह मंदिर सुप्रसिद्ध नागौर किले के अंदर है । यह किला १०४० साल पुराना है । यह मंदिर नागौर दुर्ग की तरह पूर्व जोधपुर नरेश की व्यक्तिगत संपत्ति हैं । मंदिर परिसर उजाड और क्षतिग्रस्त है इसलिए जीर्णोद्धार की अत्यंत आवश्यकता हैं । वहाँ पर नवीन शामलालजी त्रिवेदी पूजारी है वह नाहर माता की आरती पुजा प्रसादी की व्यवस्था पूर्व सूचना पर करते हैं । फोन: ०१५८२-२४४३८७ मो. ०९४१४४६८४७४

॥ श्री पार्श्वनाथाय नमः ॥

नाहर वंश - इतिहास के झरोखे से

हमारे 23 वे तीर्थंकर प्रभु पार्श्वनाथजी की अधिष्ठायक देवी चकेश्वरी माता (शक्तिदेवी) ने आर्कुन्ड पर्वत (माउंट आबु) पर चार क्षत्रिय जातियाँ बनाई।

१) परमार (पोमार)

२) परिहार

३) चौहान

४) सोलंकी

परमार क्षत्रिय राजपुत थे। उनकी कुलदेवी अम्बुदा (चामुंडा या भवानी) माता थी।

आज भी माऊंट आबु में अम्बुदा माता का मंदिर विद्यमान है।

नाहर वंश का इतिहास

यह पुस्तिका आप वेबसाईड से डाऊनलोड कर सकते हैं।

www.naharparivaar.com/org

उपकेशपुर (ओसियाँ) नगरी का इतिहास

भगवान पार्श्वनाथ के पांचवें पट्टधर आचार्य स्वयंप्रभसूरि हुए । आपके शिष्य श्री रत्नप्रभसूरि अत्यंत प्रभावी आचार्य हुए जिनके समय-काल में ओसिया नगरी मरुप्रदेश की एक बड़ी नगरी हुआ करती थी ।

आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने सबसे पहले श्रीमाल के राजा जयसैनादि 90000 घरों के क्षत्रियों को मांस मदिरा छुड़वा कर जैन बनाया था । राजा जयसैन को दो रानियाँ थीं । बड़ी का पुत्र भीमसेन और छोटी का पुत्र चन्द्रसैन था । जिसमें चन्द्रसैन तो अपने पिता का अनुकरण कर जैनधर्म की उपासना एवं प्रचार करता था पर भीमसैन की माता शिवधर्मोपासिका होने से भीमसैन शिवधर्मोपासक ही रहा । यही कारण था कि दोनों बन्धुओं में धर्म विषय सम्बन्धी द्वंद्वता चलती थी । पर स्वयं राजा जयसैन इन बातों को सुनता था तब उसको बडा भारी दु:ख हुआ करता था और यह भी विचार आया करता था कि यदि भीमसैन को राजसत्ता दे दी गई तो यह धर्मान्धता के कारण जैनधर्मापासकों को सुख से श्वास नहीं लेने देगा इत्यादि ।

राजा जयसैन ने अपनी अन्तिमावस्था में अपने मनोगत भाव चन्द्रसैन को कहे जिसके उत्तर में चन्द्रसैन ने कहा पूज्य पिताजी आप इस बात का कुछ भी विचार न करें । यह तो जैसे ज्ञानियों ने भाव देखा है वैसे ही बनेगा । आप तो अन्तिम समय चित्त में समाधि रख्खें । जैनधर्म का यही सार है कि समाधि मरण से आराधिक हो अपना कल्याण करले इत्यादि ।

फिर भी राजा जयसैन के दिल में जैनधर्म की इतनी लगन थी कि उन्होंने उमराव मुत्सद्दी आदि अग्रसरों को बुला कर कहा कि मेरा तो अब अन्तिम समय है और मैं आप लोगों को यह कहे जाता हूँ कि मेरे बाद मेरा पदाधिकार चन्द्रसैन को देना । कारण, यह राजतंत्र चलाने में सर्व प्रकार से योग्य है इत्यादि कह कर राजा जयसैन ने तो अल्प समय में आराधना पूर्वक समाधि के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया ।

बाद राजपद के लिए तत्काल ही दो पार्टियाँ बन गई । एक पार्टी का कहना था कि राजा जयसैन की अन्तिमाज्ञानुसार राजपद चन्द्रसैन को दिया जाय । तब दूसरी पार्टी का कहना था कि राजा चाहे धर्मान्धता के कारण चन्द्रसैन को राज दैना कह भी गये हों पर यह नीतिविरुध्द कार्य कैसे किया जाय ? कारण, भीमसैन राजा का बडा पुत्र होने से राज्य का अधिकारी वही है । यह मतभेद केवल राजपद का ही नहीं अपितु धर्म का भी था और इस पक्षान्धता ने इतना जोर पकड़ा कि उसका अन्तिम निर्णय करना तलवार की धार पर आ पड़ा ।

चन्द्रसैन जैसा धर्मज्ञ था वैसा ज्ञानी भी था । उसने सोचा कि यह जीव अनंत बार राजा हुआ है इससे आत्मिक कल्याण नहीं है । केवल एक नाशवान राज के कारण हजारों लाखों मनुष्यों का स्वाहा हो जायगा । अत: उसने अपनी पार्टीवालों को समझा बुझाकर शान्त किया । बस फिर तो था ही क्या ? शिवोपासकों का पानी नौ गज चढ़ गया और भीमसेन को राजतिलक कर राजा बना ही दिया ।

भीमसैन ने राजपद पर आते ही जैनों पर जुल्म शुरु कर दिया मानों कि जैनों से चिरकाल का बदला ही लेना हो ? इस

हालत में चन्द्रसैन की अध्यक्षता में जैनों की एक सभा हुई और उसमें नगर त्याग का निश्चय कर लिया । राजा चन्द्रसैन ने श्रीमालसे आबूकी ओर एक नया नगर बसाने की गरज से प्रस्थान किया तो एक अच्छा उन्नत स्थान आपको मिल गया । बस वहाँ ही उसने नींव डालकर नगर बसाया और उसका नाम चंद्रावती नगरी रख दिया । बस श्रीमाल नगर के जितने जैन थे वे सबके सब नूतन स्थापित की हुई चन्द्रवती मे आकर अपने स्थान बनाकर वहां रहने लगे । वहाँ का राजा चन्द्रसैन को बना दिया । थोड़े ही समय में यह नगरी अलकापुरी के सदृश होगई और आस पास के बहुत से लोग आकर बस गये । वहां के लोगों के कल्याणार्थ राजा चन्द्रसैन ने भगवान पार्श्वनाथ का विशाल मंदिर भी बनाया, कहा जाता है कि एक समय चन्द्रावती में जैनों के 360 मन्दिर थे अत: जैनपुरी ही कहलाती थी ।

जब श्रीमाल से जैन सबके सब चलै गये तो पीछे था ही क्या? फिर भी रहे हुए लोगों की व्यवस्था के लिये कार्य्यकर्ताओं ने तीन प्रकोट बना दिये प्रथम प्रकोट में कोटिध्वज द्वितीय प्रकोट में लक्षाधिपती और तृतीय प्रकोट में शेष लोग । इस प्रकार व्यवस्था करने पर फिर नगर की थोड़ी बहुत सुन्दरता दीखने लगी ।

कई ग्रन्थों में इस नगर की प्राचीनता बतलाते हुए युग में नामों की रुपान्तरता भी बतलाई है । जैसे कृतयुग में रत्नमाल, त्रेतायुग में पुष्पमाल, द्वापर में वीरनगर और कलियुग में श्रीमाल, भिन्नमाल बतलाया है ।

राजा भीमसैन के दो पुत्र थे । १ – श्रीपुंज, २ – सुरसुन्दर । और श्रीपुंज के पुत्र उत्पल देव (श्रीकुमार)।

एक समय का जिक्र है कि उत्पलदेवकुमार आपसी ताना के

कारण अपमानित हो नगर से निकल गया । उसकी इच्छा एक नया नगर बसा कर स्वयं राज करने की थी । जब कार्य बनने को होता है तब निमित्त कारण सब अनुकूल मिल ही जाता है । इधर तो राजकुमार अपमानित होकर नगर से निकल रहा था उधर प्रधान का पुत्र ऊहड़ कुमार भी संयोग वश अपमानित होकर राजपुत्र के साथ हो गया ।

नया नगर बसाना यह कोई बच्चों का खेल एवं साधारण कार्य नहीं था पर एक बड़ा ही जबरदस्त कार्य था । अत: न अकेला राजकुमार कर सकता था और न मंत्रीपुत्र ही, पर कार्य निकट भविष्य में ही बनने को था कि कुदरत ने दोनों का संयोग बना दिया ।

जब दोनों नवयुवकों ने नगर को त्याग कर एक बड़ी आशा पर प्रस्थान कर दिया तब उनको प्रबल पुण्योदय के कारण शकुन वगैरह अच्छे से अच्छे होते गये। अत: क्रमश: वे रास्ता चलते चलते एक जंगल में होकर जा रहे थे तो रास्ते में एक सरदार (प्रधान) मिला । उनके उन्हें तेजपुंज और चेहरेपर वीरता की झलक देख कर पूछा कि कुँवरजी कहाँ से पधारे और कहाँ जा रहे हो ? कुमार ने जबाब दिया कि हम श्रीमाल नगर से आये और एक नया नगर आबाद करने को जा रहे हैं । सरदार ने सुन कर आश्चर्य किया और कहा कुँवरजी नया नगर आबाद करना बच्चों का खेल तो है ही नहीं, आपके पास ऐसी कौन सी सामग्री है कि जिसके आधार पर आप नया नगर बसाने की बातें कर रहे हो ? कुमार ने जवाब दिया कि सामग्री हमारी भुजाओं में भरी हुई है जिससे हम नया नगर आबाद करेंगे । सरदार ने सोचा यह कोई राजवंशी है । अत: उसने प्रार्थना

की कि कुंवरजी दिन थोड़ा ही रह गया है, आज तो यहाँ ही विश्राम कीजिये । कुमार ने मंत्री की ओर देखा और दोनों ने एक मत होकर सरदार की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके साथ हो लिये । सरदार था विराट नगर का संग्रामसिंह नाम का एक साधारण राजपूत ।

सरदार ने दोनों मेहमानों को अपने घर लाकर भोजन पानी से स्वागत किया और अपने कुटुम्बियों से सलाह की कि अपने जालणदेवी कन्या बड़ी हो गई है, इन मेहमानों के साथ ब्याही जाय तो भविष्य में एक राजरानी पद को प्राप्त कर लेगी । अत: सरदार ने कुंवरजी से प्रार्थना की कि आपने हमारा मकान पावन किया है तो इसको चिरस्थायी बनाने के लिये हमारी कन्या के साथ शादी कर लिजिये ।

कुँवरसाहब ने जबाब दिया कि मैं एक मुसाफिर हूँ आप सोच समझ कर कार्य करें ।

सरदार – मैंने ठीक सोच समझ करके ही प्रार्थना की है जिसको आप स्वीकार कीजियेगा ।

जब सरदार का अति आग्रह हुआ तो मंत्रीकुमार ऊहड़ ने इसको शुभ शकुन एवं अच्छा निमित्त समझ कर सरदार संग्रामसिंह की प्रार्थना को इस शर्त पर स्वीकार कर ली कि जब हम राज स्थापन कर पावेंगे तब आकर लग्न करेंगे । सरदार ने मंजूर करके सगाई की सब रस्म कर डाली । बस प्रभात होते ही दोनों कुमार वहाँ से रवाना हो गये । उस समय शकुन बहुत ही अच्छे हुये अत: दोनों का उत्साह बढ़ता ही गया ।

एक सौदागर कई घोड़े लेकर जा रहा था । मंत्री ऊहड़ ने

जाकर १८० अश्व इस शर्त पर खरीद कर लिये कि जब हम नगर आबाद करेंगे तब तुम्हारे इन अश्वों का मूल्य चुका देंगे । केवल उनके वचन पर विश्वास करके सौदागर ने अश्व दे दिये ।

दोनों वीर अश्व लेकर क्रमश: ढेलीपुर (देहली) नगर में पहुँचे । उस समय वहाँ पर श्री साधु नामक राजा राज कर रहा था पर उसके ऐसा नियम कि ६ मास राज कार्य देखता और ६ मास अन्तेवरगृह में रहता । भाग्यवशात् जिस दिन दोनों कुमार देहली पहुँचे उसी दिन राजा ने अन्तेवरगृह में प्रवेश किया । अत: राजकुमार प्रतिदिन दरबार में मुजरा करने को जाकर एक अश्व भेंट कर दिया करता था । ऐसे करते 180 दिनों में 180 अश्व भेंट का समाचार राजा ने सुना तो तुरंत ही कुमार को बुला कर कहा कि समुद्रतट पर भूमि पसन्द कर लो । वहाँ से आगे चल कर एक समुद्र तट पर आकर देखा तो वहाँ उन्होंने भूमि पसंद कर ली क्योंकि जहाँ पानी की प्रचुरता होती है वहाँ सब बातों की सुविधा रहती है । खाद्य पदार्थ भी पैदा होता है जिससे व्यापार उन्नत उठता है इन फायदों को सोच कर उन्होंने वहीं छड़ी रोप दी अर्थात् नगर बसाने का निश्चय कर लिया ।

इस बात की इत्तला भिन्नमाल में पहूँची तो वहाँ से हजारों लोग चल कर नूतन नगर में आ बसे । भूमि उसवाली होने से नूतन नगर का नाम उपकेश नगर रख दिया । स्वल्प समय में नगर नौ योजन चौड़ा और १२ योजन लम्बा बस गया । राजा भीमसैन का जनता के प्रति सद्भाव नहीं पर क्रूर भाव ही था । अत: राजा के अत्याचार से दुखित हुई जनता उन दु:खों से मुक्त हो नूतनवास उपकेश नगर में आ बसी । उस नूतन नगर की अधिष्टात्री चामुंडा देवी की स्थापना कर दी ।

उस नूतन बसे हुये नगर में व्यापार बहुत होने लगा । उस समय नूतन बसे हुये उपकेशपुर में व्यापारार्थ दूर 2 के लोग आकर बस गये । प्रसंगोपात उपकेशपुर की स्थापना कह कर अब मूल विषय पर आते हैं ।

आचार्य स्वयंप्रभसूरि के शिष्य आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशपुर पधारे पर किसी एक आदमी ने भी उनका स्वागत सत्कार नहीं किया, इतना ही क्यों पर किसी ने ठहरने के लिये स्थान तक भी नहीं बतलाया । इस हालत में आचार्य श्री ने अपने साधुओं के सात लुणाद्री पहाड़ी पर जाकर ध्यान लगा दिया । उन मांस आहारियों के प्रदेश में जैन मुनियों के लाने योग्य सात्विक पदार्थ के आहार का कहीं पर योग नहीं मिलता था अत: कई अर्सा से मुनि तपस्या किया करते थे और इस प्रकार निरन्तर तपस्या करना कोई साधारण काम भी नहीं था । तब कोई साधुओं को शरीर का निर्वाह न होता देख पारणा करने की इच्छा हुई तो वे गुरु महाराज की आज्ञा लेकर नगर में भिक्षा के लिये गये पर नगर में ऐसा एक भी घर नहीं पाया की जैन साधु भिक्षा ले सके । क्योंकि नगर के तमाम लोग मांसाहरी थे । और मदिरा पीते थे घर 2 में मांस मदिरा का खूब गहरा प्रचार था । रक्त एवं हड्डियाँ घास फूस की भांति दृष्टिगोचर होती थी एवं मदिरा पानी की भाँति पी जाती थी । अत: साधु जैसे रिक्त हाथों गये थे वैसे ही वापिस लौट आये और तपोवृध्दि कर ध्यान में स्थित हो 'ज्ञानामृत भोजनम्' इस युक्ति को चरितार्थ कर रहे थे पर औदारिक शरीर वाले इस प्रकार आहार बिना कहाँ तक रह सकते हैं ?

उपाध्याय वीरधवल ने समय पाकर रत्नप्रभसूरिजी से

निवेदन किया कि हे पूज्यवर ! साधुओं को तप करते बहुत समय हो गया । सब साधु एक से भी नहीं होते हैं । अत: इस प्रकार कैसे काम चलेगा ? इस पर सूरिजी ने आज्ञा फरमा दी कि यदि ऐसा ही है तो यहाँ से विहार करो । इस बात को सुन कर उपाध्यायजी ने भी सब साधुओं को विहार की आज्ञा दे दी और साधुओं ने विहार की तैयारी कर ली । वहाँ की अधिष्टात्री देवीचामुंडा ने अपने ज्ञानद्वारा इस सब हाल को जान विचार किया कि आर्बुदाचल से देवी चक्रेश्वरी के भेजे हुये महात्मा मेरे नगर में आकर इस प्रकार भूखे प्यासे चले जाए इसमें मेरी क्या शोभा रहेगी । अत: देवीचामुंडा ने सूरिजी के चरण कमलों में आकर प्रार्थना की कि है प्रभो ! आप कृपा कर यहाँ चतुर्मास करावें आपको बहुत लाभ होगा इत्यादि । इस पर सूरिजी ने अपने ज्ञान में उपयोग लगा कर देखा और कहा कि जो विकट तपश्चर्या के करनेवाले हैं मेरे पास ठहरें । शेष विहार कर सुविधा के क्षेत्र में चतुर्मास करें। इस पर कनकप्रभादि 465 साधु विहार कर कोरंटपुर की ओर चले गये और शेष 35 साधु सूरिजी की सेवा में रहें, जो मास दो मास तीन मास और चार मास की तपश्चर्य्या करने में कटिबध्द थे ।

इधर तो सूरिश्वरजी अपने शिष्यों के साथ भूखे प्यासे जंगल की पहाड़ी पर ध्यान लगा रहे थे । उधर देवी ऐसे सुअवसर की प्रतीक्षा कर रही थी कि मैंने सूरिजी को वचन देकर चतुर्मास करवाया है तो इनके लिये कोई भी लाभ का कारण हो । ठीक है कि कार्य बनने को होता है तब कोई न कोई निमित्त भी मिल जाता है ।

यह बात तो आप पीछे पढ़ आये है कि राजपुत्र उत्पलकुमार ने अपने मुसाफिरी के समय वैराटपुर के क्षत्रिय वीर संग्रामसिंह के

यहाँ एक रात्रि मेहमान रह कर उनकी पुत्री जालणदेवी के साथ सम्बन्ध किया था । बाद आपने उपकेशपुर आबाद करने के पश्चात् उनके साथ शादी कर ली थी । उसी जालन देवी के एक पुत्री हुई थी जिसका नाम सौभाग्य सुन्दरी रखा था ।

इधर मंत्री ऊहड के एक पुत्र हुआ जिसका नाम त्रिलोक्यसिंह रखा था । भाग्यवशात् राजा उत्पलदेव ने नगर आबाद करवाने में मंत्री ऊहड का उपकार समझ अपनी पुत्री सौभाग्यसुन्दरीका विवाह मंत्री पुत्र त्रिलोक्यसिंह के साथ कर अपने पर जो ऋण था उसे हलका कर दिया था । वे दम्पति आनन्द में अपना संसार निर्वहन कर रहे थे ।

थली प्रान्त में एक पीणा* जाति का सर्प होता है । लघु शरीर होने पर भी उसका विष गुरु होता है । जिस किसी को काटा हो तो फिर उसके जीवन की आशा कम ही रहती है ।

भाग्यवशात एक समय राजकन्या अपने पतिदेव की शय्या पर सो रही थी । रात्रि में अकस्मात् पीणा सर्प ने मंत्रीपुत्र त्रिलोक्यसिंह को काट खाया । जिनका विष उसके सब शरीर में व्याप्त हो गया । जब राजपुत्री ने जागृत हो अपने पतिदेव के शरीर को विष व्याप्त पाषाणवत देखा तो एकदम दु:ख के साथ रुदन करने लगी ।

जिनको सुन कर सब कुटुम्ब एकत्रित हुआ और कुमार की दशा पर करुण क्रन्दन करने लगा । इधर बहुत से मंत्र तंत्रवादियों को बुलाया गया । उन्होंने अपना - अपना उपचार किया पर उन सबके सबने निराश होकर कह दिया कि राजजमाई मृत्यु को प्राप्त हो गया । अब उसका शीघ्र अग्निसंस्कार कर देना चाहिये ।

बस ! फिर तो दु:ख का पार ही क्या था ? कारण इस प्रकार की मृत्यु उस समय बहुत कम होती थी । जिसमें भी मंत्रीपुत्र एवं राजजमाई की युवकवय में यकायक मृत्यु हो जाना बड़े ही दु:ख की बात थी । नगर भर में हाहाकार मच गया । पर इसका उपाय भी तो क्या था ? उस मृत कुमारके लिए एक बैकुंटी (मंडी) बना कर उसमें बैठा कर श्मशान की ओर जाने लगे । इधर राजकन्या अपने पतिदेव के साथ जल कर सतित्व धर्म रखने के लिये अश्वारुढ़ हो बैकुट के साथ हो गई ।

नगर में शोक के काले बादल सर्वत्र छा गये थे । राजा, मंत्री और नगर के लोग रुदन करते हुये राजजामाता की स्मशान यात्रा के लिये जा रहे थे । भाग्यवशात् रास्ते में एक लघु साधु ने आकर उन लोगों से कहा अरे मूर्ख लोगो ! इस जीते हुये मंत्रीपुत्र को जलाने के लिये स्मशान क्यों ले जा रहे हो ? बस, फिर तो था ही क्या ? उन लोगों ने जाकर राजा एवं मंत्री से सब हाल निवेदन किया । अत: उनके अन्तरात्मा में कुछ चैतन्याता जागृत हुई । शिघ्र ही कहा की उस साधु को यहाँ लाओ । जब साधुको ढुँढ़ने को गये तो वह नहीं मिला । इस हालत में सब की सम्मति हुई कि बहुत अर्से से शहर के बाहर लुणाद्री पहाड़ी पर कई साधु आये हुये हैं और वह लघु साधु भी उनके अन्दर से एक होगा, अत: मृतकुमार को लेकर वहाँ ही चलना चाहिये । बस गरजवान क्या नहीं करते हैं ?

सब लोग चल कर सूरिजी के पास आये और राजा तथा मंत्री हाथ जोड़ कर दीनस्वर से कहने लगे । कि हे दयासिन्धो ! आज हमारे पर दुर्दैव का कोप होने से हमारा राज्य शून्य हो गया है । हमारे पुत्र रुपी धन को मृत्यु रुपी चोर ने हरण कर लिया है । हे

करुणावतार ! आज हमारे दु:ख का पार नहीं है, अत: आप कृपा कर हमारे संकट को दूर कर पुत्र रुपी भिक्षा प्रदान करें । आप महात्मा हैं, रेख में मेख मारने को समर्थ हैं इत्यादि नम्रता पूर्वक प्रार्थना की ।

इस पर वीरधवलोपाध्याय ने समय एवं लाभालाभ का कारण जान उन लोगों से कहा कि थोड़ा गर्म जल होना चाहिये । बस पास में ही नगर था और आज तो घर २ में गरम जल था । एक आदमी जाकर गर्मं जल लाया । उस गर्म जल से सूरिजी के चररांगुष्ठ का प्रक्षालन कर इस जल को मंत्री पुत्र पर डाला । बस, फिर तो था ही क्या, मंत्रीपुत्र के शरीर से विष चोरों की तरह भाग गया और मंत्रीपुत्र खड़ा हो कर इधर उधर देखने लगा ।

सब लोग आश्चर्यचकित हो गये । चारों ओर हर्ष के नाद एवं बाजे बजने लगे । और सबके मुंह से यही शब्द निकलने लगे कि आज इन महात्मा की कृपा से मंत्रीपुत्र ने नया जन्म लिया है । अर्थात् काल के गाल में गया हुआ राजजमाई जीवित हो गया है इत्यादि । अब तो नगर में सर्वत्र श्री रत्नप्रभसूरि और जैनधर्म की भूरि–भूरि प्रशंसा होने लगी ।

राजा और मंत्री ने सोचा कि महात्मा का अपने पर महान उपकार हुआ है तो प्रत्युपकार के लिये अपने को भी महात्मा का उचित सत्कार करना चाहिये । अत: उन्होंने अपने खजांचियों को हुक्म कर दिया कि तुम्हारे पास कोष में जितने बढ़िया से बढ़िया रत्न मणियां हो वह सूरिजी की भेंट कर दो । तत्पश्चात महात्माजी की जयध्वनि और हर्ष वाजित्रों के साथ मंत्रीपुत्र को लेकर नगर की ओर चले गये और सर्व नगर में महान हर्ष के साथ सूरिजी की भूरि

भूरि प्रशंसा करने लगे । वे ही लोग क्या, पर चमत्कार को नमस्कार सर्वत्र हुआ ही करता है ।

जब राजखजांचियों ने बहुमूल्य रत्नमणि आदि लेकर सूरिजी की सेवा में भेंट की तो सूरिजी सोचने लगे कि अहो संसार–लुब्ध जीवों की अज्ञानता कि जिस परिग्रह को ज्ञानियों ने अनर्थ का मूल बतलाया है संसार में जितने पौद्गलिक सुख:दुख और तृष्णा है उनका मूल कारण परिग्रह ही है तथा मैं अनर्थ का मूल और संसार की वृध्दि समझ कर परिग्रह का त्याग कर आया हूँ । उसको ही संसारी लोग एक महत्व की वस्तु समझ यहां लाकर मुझे खुश करना चाहते हैं इत्यादि, विचार करते हुए आप विशेष उदासीनता के साथ केवल ध्यान में ही मस्त रहे ।

इस पर खजांचियों ने सोचा कि शायद् महात्मा इतने थोड़ा द्रव्य से संतुष्ट नहीं हुये हों, उन्होंने जाकर राजा एवं मंत्री से कहा कि हमारी भेंट महात्माजी ने स्वीकार नहीं की है । अत: आप जो कुछ हुक्म फरमावें वैसा ही किया जाय ।

मंत्री ने राजा से कहा कि अपनी बड़ी भारी गलती हुई है कि जिन महात्मा का अपने पर इतना बड़ा उपकार हुआ उनके लिये अपने नौकरों से भेंट करवाई । अत: खुद अपने को चलना चाहिये । बस, फिर तो देरी ही क्या थी ? चार प्रकार की सेना तैयार करवाई और सर्व नगर में इत्तला करवा दी । अत: बड़े ही समारोह से राजा मंत्री एवं नागरिक लोगों ने सूरिजी के चरण कमलों में आकर वन्दन कर नम्रता के साथ प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आपका तो हम लोगों पर महान उपकार है, पर हम कृतघ्नी लोग उसको भूल कर आपका कुछ भी स्वागत नहीं कर सके । अत: उस अपराध को तो क्षमा करें